1957H Bhagvan Mahaveer and his Words

Bhagvan Mahaveer aur Unke Divya Updesh (*in Anekant, 1957*)

भ० महावीर और उनके दिव्य उपदेश

(श्री हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री)

चैत्रका महीना अनेक दृष्टियोंसे अपना खास महत्त्व रखता है। भ० ऋषभदेव—जिन्हें लोग युगादि महामानव, सृष्टा, विधाता कहते हैं—का जन्म इसी चैत्र मासके कृष्णपक्षको नवमीके दिन हुआ। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामका जन्म चैत्र शुक्ला नवमीके दिन हुआ। अहिंसाके परम अवतार भ० महावीरका जन्म भी इसी चैत्र मासकी शुक्ला त्रयोदशीको हुआ। तथा श्रीरामके सीतापहरणके समय उनके संकटमें सहायक होनेसे संकट-मोचन नामसे प्रसिद्ध, वज्रांगबली श्री हनुमानका जन्म भी इसी चैत्र मासकी शुक्ला पूर्णिमाके दिन हुआ। इस प्रकार चार महा-पुरुषोंको जन्म देनेका सौभाग्य इसी इस चैत्र मासको प्राप्त है। भारतवर्षके प्रसिद्ध दो संवत्सर—विक्रम संवत् और शक संवत्-भी इसी इसी चैत्र मासके शुक्ल और कृष्ण पक्षसे प्रारम्भ होते हैं। इस प्रकार यह चैत्र मास भारतीय इतिहास-में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

जिन्होंने भारतीय इतिहासका अध्ययन किया है, वे जानते हैं. कि महाभारत और रामायण कालसे पहले भारतवर्षमें ब्राह्मण और श्रमण नामकी दो संस्कृतियाँ प्रचलित थीं। जैन आगमोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। भ० ऋषभदेवने सर्वप्रथम स्वयं प्रव्रजित होकर श्रमण संस्कृतिका श्रीगणेश किया, तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र एवं आद्य सम्राट् भरत चक्रवर्तीने ब्राह्मणोंकी स्थापना कर उन्हें क्रियाकाण्डकी ओर अग्रसर किया है। ये दोनों ही धाराएँ तभीसे बराबर प्रवाहित होती हुई चली आ रही हैं। किन्तु बीच-बीचमें उन दोनोंके भीतर विकृतिके गन्दे नाले [illegible] मिलते रहे और उस समय होने वाले मध्यवर्ती २२ तीर्थंकरोंने उभय-धाराओंको संशोधित करनेके भी प्रयत्न किये हैं।

भरत चक्रवर्ती-द्वारा संस्थापित ब्राह्मण संस्कृतिका पतन भ० मुनिसुव्रतनाथके समयसे प्रारम्भ हुआ। इसी समयके आसपास वेदोंकी रचना आरम्भ हुई। भगवान् नेमिनाथ और पार्श्वनाथके समयमें ब्राह्मण संस्कृतिने अपनी विकृतिका उग्र रूप धारण कर लिया। ब्राह्मण लोग वेदोंको ईश्वरीय वाक्य मानने लगे। इन्द्र, सोम, यम, वरुण आदि देवताओंकी पूजा कर और यज्ञों में पशु-बलि देकर उससे स्वर्ग-प्राप्ति एव सांसारिक ऋद्धियोंकी कामना करने लगे। तथा ब्रह्माके मस्तक आदि चार अंगोंसे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको उत्पन्न हुआ कह कर अपनेको सबसे श्रेष्ठ मानकर औरोंको हीन या तुच्छ समझने लगे।

श्रमण लोग इन बातोंके प्रारम्भसे विरोधी रहे हैं। वे संन्यास, आत्म-चिन्तन, सयम, समभाव, तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य-वचनादिके ऊपर जोर देते थे एवं आत्मशुद्धिको प्रधान मानते थे। उनका लक्ष्य लौकिक वैभव या स्वर्गादि अभ्युदयकी प्राप्ति न होकर परम पुरुषार्थ निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्तिका रहा है।

आजसे अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जब भ० महावीरका जन्म हुआ, उस समय ब्राह्मण संस्कृतिका बोलबाला था और वह अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। भ० महावीरने ज्योंही होश संभाला, तो देखा कि धर्मके नाम पर मूढ़ता-पूर्ण क्रियाकाण्डका कितना आडम्बर रचा जा रहा है। यज्ञ-यागादिको धर्म मानकर उनमें मूक पशुओंकी बलि दी जा रही है, लोग अपनी रसना इन्द्रियको तृप्त करनेके लिए जीवोंकी हिंसा कर रहे हैं, और उन्हें तड़पते एवं चीत्कार करते हुए भी यज्ञाग्निमें जिन्दा भून कर उनके मांसका आस्वाद लेकर प्रसन्न हो रहे हैं। देवी-देवताओंके नाम पर कितना अन्ध-विश्वास फैला हुआ है, तथा सबसे दयनीय दशा स्त्री और शूद्रोंकी हो रही है कि जिन्हें वेदादिके पठन पाठनकी तो बात ही दूर है, सुनने तकका भी अधिकार नहीं है। शूद्रोंके वेदध्वनि श्रवण कर लेने पर उनके कानोंमें शीशा और लाख भर दिये जाते हैं, ⊛ वेदोच्चारण करने पर उनके शरीरके दो टुकड़े कर दिये जाते हैं। शूद्रोंको निंद्य एवं घृणित समझनेके लिए यह मान्यता प्रचलित की गई थी कि शूद्र का अन्न खा लेने पर उच्च वर्णी लोगोंको सूअरका जन्म लेना पड़ता है+। प्रातःकाल बाहिर कहीं जाते-आते समय शूद्रका देखना अपशकुन समझा जाता है, उनके देखनेसे अपवित्र हुई आंखोंको शुद्ध करनेके लिए उन्हें पानीसे धोना और शूद्रके शरीरका स्पर्श कर लेने पर सचेल स्नान तक करना आवश्यक माना जाता है। एक ओर तो भ० महावीरने ब्राह्मण संस्कृतिका यह बोलबाला देखा। दूसरी ओर देखा कि श्रमण-संस्कृति भी अस्त-व्यस्त सी हो रही है और साधु-

⊛ गौतमधर्मसूत्र, १२-४-६। + वशिष्ठध. सूत्र, ६-२७।

06.05.2005 12 33

संन्यासी जन भी मूढ़ता-पूर्ण कायक्लेश करनेको ही तप मान कर अपनेको कृतकृत्य अनुभव कर रहे हैं। कहीं कोई धूनी रमा रहा है, तो कहीं कोई पंचाग्नि तप कर अपने साथ दूसरे प्राणियोंको—काष्ठ-गत जीव-जन्तुओंको—भी जिन्दा ही जला रहा है। कहीं सती होनेके नाम पर जीवित कोमलांगी ललनाए जलाई जा रहीं हैं, तो कहीं कोई पर्वतसे गिर कर या नदीमें कूद कर आत्म-घात करनेको ही धर्म मान रहा है।

इस प्रकार दोनों सस्कृतियोंकी दुर्दशा देख कर और चारों ओर अज्ञानका फैला हुआ साम्राज्य देखकर भ० महावीरका हृदय दुःख और करुणासे द्रवित हो उठा, उनके विचारोंमें उथल-पुथल मच गई और उन्होंने सत्य धर्मके अन्वेषण एवं प्रचलित धर्मोंके संशोधन करनेका अपने मनमें दृढ़ निश्चय किया। फल-स्वरूप भरी जवानी-में—तीस वर्षकी उम्रमें—वे राजसी वैभव एवं सुन्दर परिवार-को छोड़ करके प्रव्रजित हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि मेरे कर्त्तव्य-पथमें कितनी ही विघ्न-बाधाएँ क्यों न आवें, तथा कितने ही घोर उपसर्ग और संकट क्यों न उपस्थित हों, किन्तु मैं सबको धैर्यपूर्वक शान्त भावसे सहन करता हुआ अपने संकल्पसे कभी चल-विचल न होऊँगा और सत्यकी शोध करूँगा।

भ० महावीरने प्रव्रजित होनेके पश्चात् अपने लिए कुछ नियम निश्चित किये। वस्त्रोंके परिधानका यावज्जीवन-के लिए परित्याग किया, दिनमें दूसरोंके द्वारा प्रदत्त, असं-कल्पित, निर्दोष आहार-जल एक बार लेने, जमीन पर सोने और निर्जन जंगलोंमें मौन-पूर्वक एकाकी जीवन बितानेका संकल्प किया। उन्हें अपने इस साधक जीवनमें अनेक बार अतिभयानक कष्टोंका सामना करना पड़ा; परन्तु वे एक वीर योद्धाके समान अपने कर्त्तव्य-पथसे कभी भी विचलित नहीं हुए।

पूरे बारह वर्ष तक मौनपूर्वक आत्म-चिन्तन एवं मननके पश्चात् भ० महावीरको कैवल्य प्राप्त हुआ और वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गये।

भ० महावीरकी इस सर्वज्ञता और सर्व-दर्शिताको स्वयं महात्मा बुद्धने भी स्वीकार किया है और एक अवसर पर अपने शिष्योंसे कहा है -

"निगंठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु सव्वदस्सावी अपरिसेसं णाण-दंसणं परिजानाति; चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सतत समित्तं णाणं दंसणं पच्चुपट्ठिति[1]।"

हे आयुष्मन्! निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे अपने ज्ञान और दर्शनके द्वारा अशेष चराचर जगत्-को जानते और देखते हैं। हमारे चलते, ठहरते, सोते-जागते समस्त अवस्थाओंमें उनका ज्ञान और दर्शन सदैव उपस्थित रहता है।

वेदोंमें भी भ० महावीरका स्मरण किया गया है। यथा—

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेदस्याम।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वेदेवा आदित्या यज्ञियासः[2]

हे देवोंके देव वर्द्धमान, आप सुवीर हैं, व्यापक हैं। हम सम्पदाओंकी प्राप्तिके लिये घृतसे आपका आवाहन करते हैं। इसलिए सब देवता इस यज्ञमें आवें और प्रसन्न होवें।

भ० महावीरकी नग्नता और तपस्विताको भी वेदोंमें स्वीकार किया गया है। यथा—

आतिथ्यं रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता[3]॥

अतिथि-स्वरूप, पूज्य, मासोपवासी, नग्नरूपधारी महावीरकी उपासना करो, जिससे संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरूप तीन अज्ञान और धनमद एवं विद्यामदकी उत्पत्ति नहीं होवे।

भ० महावीरके उपदेशोंसे प्रभावित होकर इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि बड़े-बड़े वैदिक विद्वानोंने अपने सैकड़ों शिष्योंके साथ भगवान्का शिष्यत्व स्वीकार किया।

भ० महावीरने कैवल्य-प्राप्तिके पश्चात् भारतवर्षके विभिन्न भागोंमें विहार कर ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश दिया। उन्होंने अपने उपदेशोंमें पुरुषार्थ पर ही सबसे अधिक जोर दिया है। उनका स्पष्ट कथन था कि आत्म-विकासकी सर्वोच्च अवस्थाका नाम ही ईश्वर है और इसलिए प्रत्येक प्राणी अपनेको सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त कर और अपने आपको आत्मिक गुणोंसे युक्त कर नरसे नारायण और आत्मासे परमात्मा बन सकता है। इसी सिलसिलेमें उन्होंने बताया कि उक्त प्रकारके परमात्मा या परमेश्वरको संसारकी सृष्टि या संहार करनेके प्रपंचोंमें पड़ने-की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। जो यह मानते

१ मज्झिमनिकाय भाग १, पृष्ठ ९२। २ ऋग्वेद, मंडल २, अ० १, सुक्त ३। ३ यजुर्वेद, अ० १९, मंत्र १४

06.05.2005 12:33

हैं कि कोई एक अनादि-निधन ईश्वर है, और वही जगत-का कर्त्ता, हर्त्ता एवं व्यवस्थापक है, उसके सम्बन्धमें भ० महावीरने बताया कि प्रथम तो ऐसा कोई ईश्वर किसी भी युक्तिसे सिद्ध ही नहीं होता है। फिर यदि थोड़ी देरके लिए वैसे ईश्वरकी कल्पना भी कर ली जाय तो वह दयालु है या क्रूर? यदि ईश्वर दयालु है, सर्वज्ञ है, तो फिर उसकी सृष्टि में अन्याय और उत्पीड़न क्यों होता है? क्यों सब प्राणी सुख और शान्तिसे नहीं रहते? यदि ईश्वर अपनी सृष्टिको, अपनी प्रजाको सुखी नहीं रख सकता तो, उससे क्या लाभ? फिर यही क्यों न माना जाय कि मनुष्य अपने अपने कर्मोंका फल भोगता है, जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है। ईश्वरको कर्त्ता माननेसे हम दैववादी बन जाते हैं। अच्छा होता है, तो ईश्वर करता है, बुरा होता है, तो ईश्वर करता है, आदि विचार मनुष्यको पुरुषार्थहीन बनाकर जनहितसे विमुख कर देते हैं। अतएव भ० महावीरने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठियो४ ॥

आत्मा ही अपने दुखों और सुखों का कर्त्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही शत्रु है।

उन्होंने और भी कहा—

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडसाल्मली।
अप्पा काम-दुहा धेणू अप्पा मे नंदनं वनं५ ॥

बुरी विचारधारा वाली आत्मा ही नरककी वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष है और अच्छी विचारधारा वाली आत्मा ही स्वर्गकी कामदुहा धेनु और नन्दन वन है।

इसलिए तुम्हारा दूसरेको भला या बुरा करने वाला मानना ही मिथ्यात्व है, अज्ञान है। तुम्हें दूसरेको सुख-दुख देने वाला नहीं मानकर अपनी भली बुरी प्रवृत्तियोंको ही सुख दुखका देने वाला मानना चाहिये। इसके लिये उन्होंने समस्त प्राणिमात्रको संबोधन करके कहा—

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य६ ॥

बुरे विचारों वाली अपनी आत्माका ही दमन करना चाहिए। अपने बुरे विचारोंको दमन करनेसे ही आत्मा इस लोक और परलोक दोनों में सुखी होता है।

उन्होंने बतलाया—

अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ७ ॥

विकृत विचारों वाली अपनी आत्माके साथ ही युद्ध करना चाहिए, बाहिरी दुनियावी शत्रुओंके साथ युद्ध करनेसे क्या लाभ? अपनी आत्माको जीतने वाला ही वास्तवमें पूर्ण सुखको प्राप्त करता है।

अपने बुरे विचारोंकी व्याख्या करते हुए भ० महावीरने कहा—

पंचिंदियाणि कोहं माणं मायं तहेय लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं सव्वमप्पे जिए जियं८ ॥

अपने पांचों इन्द्रियोंकी दुर्निवार विषय-प्रवृत्तिको तथा क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंको ही जीतना चाहिए। एकमात्र अपनी आत्माकी दुष्प्रवृत्तियोंको जीत लेने पर सारा जगत जीत लिया जाता है।

आत्माकी व्याख्या करते हुए भ० महावीरने बताया—

केवलणाणसहावो केवलदंसण-सहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सोऽहं इदि चिंतए णाणी ९॥

आत्मा एकमात्र—केवल ज्ञान और केवल दर्शन-स्वरूप है, अर्थात् संसारके सर्व पदार्थोंको जानने-देखने वाला है। वह स्वभावतः अनन्त शक्तिका धारक और अनन्त सुखमय है।

परमात्माकी व्याख्या भ० महावीरने इस प्रकार की—

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमप्पा परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो१० ॥

जो सर्वदोष-रहित है, शरीर-विमुक्त है इन्द्रियोंके अगोचर है, और सर्व अन्तरंग-बहिरंग मलोंसे मुक्त होकर विशुद्ध स्वरूपका धारक है, ऐसा परम निरंजन शिवंकर, शाश्वत सिद्ध आत्मा ही परमात्मा कहलाता है।

वह परमात्मा कहां रहता है, इसका उत्तर उन्होंने दिया—

णविएहिं जं णविज्जइ, झाइज्जइ झाइएहि अणवरयं
थुव्वंतेहि थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ११॥

जो बड़े-बड़े इन्द्र, चन्द्रादिसे नमस्कृत है, ध्यानियोंके द्वारा ध्याया जाता है और स्तुतिकारोंके द्वारा स्तुति किया

४ उत्तरा० अ० २० गा० ३७ उत्त० अ० २ गा० ३६।
६ उत्त० अ० १, गा० २५।
७ उत्त० अ० ६ गा० ३५। ८ उत्त० अ० ६ गा० ३६।
९. नियमसार गा० ९६। १०. मोक्षप्राभृत गा० १०३।
११. मोक्षप्राभृत गा० ६।

09-05-2005 12:34

जाता है, वह परमात्मा कहीं इधर-उधर बाहिर नहीं है; किन्तु अपने इसी शरीरके भीतर रह रहा है।

भावार्थ—वह परमात्मा दूसरा और कोई नहीं है, किंतु आत्मा ही अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लेने पर परमात्मा हो जाता है, अतः तू अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेका प्रयत्न कर।

वह शुद्ध परमात्म-स्वरूप कैसे प्राप्त होता है, इस विषय में भ० महावीर ने कहा—

कम्म पुराइउ जो खवइ अहिणव वेसु ण देइ।
परम णिरंजणु जो णवइ सो परमप्पउ होइ १२॥

जो अपने पुराने कर्मोंको—राग, द्वेष, मोह आदि विकारी भावोंको—दूर कर देता है, नवीन विकारोंको अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देता है और सदा परम निरंजन आत्माका चिन्तवन करता है, वह स्वयं ही आत्मासे परमात्मा बन जाता है।

भावार्थ—जैन सिद्धान्तके अनुसार दूसरेकी सेवा-उपासनासे आत्मा परमात्मपद नहीं पाता; किन्तु अपने ही अनुभवन और चिन्तनसे परमात्मपदको प्राप्त करता है।

संसारमें प्रचलित सर्व धर्मोंके प्रति समभाव रखनेका उपदेश देते हुए भ० महावीरने कहा—

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्माइट्ठी मुणेयव्वा १३॥

जो किसी भी धर्मके प्रति ग्लानि या घृणा नहीं करता, किन्तु सभी धर्मोंमें समभाव रखता है, वह निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि यथार्थ वस्तु-दर्शी जानना चाहिए।

सब धर्मोंके प्रति समभाव रखनेके निमित्त भ० महावीरने नयवाद, अनेकान्तवाद या समन्वयवादका उपदेश दिया और कहा—

जावंतो वयणवहा तावंतो वा णया वि सद्दाओ।
ते चेव य परसमया सम्मत्तं समुदिया सव्वे १४॥

जितने भी वचन-मार्ग—भिन्न भिन्न पंथ—संसारमें दिखाई दे रहे हैं उतने ही नय हैं और वे ही परसमय या मत हैं। वे सब अपने अपने दृष्टिकोणोंसे ठीक हैं। और उन सबका समुदाय ही सम्यक्त्व है यानी सत्यका यथार्थ या तात्त्विक स्वरूप है।

इस एक सूत्रके द्वारा ही भ० महावीरने अपने समयकी ही नहीं, बल्कि भूत और भविष्यकालमें भी उपस्थित होने वाली असंख्य समस्याओंका समाधान प्रस्तुत कर दिया। पहला और सबसे बड़ा हल तो उन्होंने अपने समयके कर्म-काण्डी क्रिया-प्रधान वैदिक और अध्यात्मवादी वैदिकेतर सम्प्रदायवालोंका किया और कहा—

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुलः १५॥

क्रिया या सदाचारके बिना ज्ञान बेकार है, कोरा ज्ञान सिद्धिको नहीं दे सकता। और अज्ञानियोंकी क्रियाएँ भी निरर्थक हैं, वे भी आत्मसुखको नहीं दे सकती। जैसे किसी बीहड़ जंगलमें आग लग जाने पर चारों ओर भागता हुआ अंधा पुरुष जलकर विनाशको प्राप्त होता है और पंगु—लंगड़ा आदमी बचनेका मार्ग देखते हुए भी मारा जाता है।

भ० महावीरने दोनों प्रकारके लोगोंको संबोधित करते हुए कहा—

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञाः न ह्येकचक्रेण रथःप्रयाति।
अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ १६

ज्ञान और क्रियाका संयोग ही सिद्धिका साधक होता है, क्योंकि एक चक्रसे रथ कभी नहीं चल सकता। यदि दावाग्निमें जलते हुए वे अन्धे और लंगड़े दोनों पुरुष मिल जाते हैं, और अन्धा, जिसे कि दीखता नहीं, किन्तु चलनेकी शक्ति है, वह यदि चलनेकी शक्तिसे रहित, किन्तु दृष्टि-सम्पन्न पंगुको अपने कंधे पर बिठा लेता है तो वे दोनों दावाग्निसे निकल कर अपने प्राण बचा लेते हैं। क्योंकि अन्धेके कंधे पर बैठा पंगु मनुष्य चलने में समर्थ अन्धेको बचनेका सुरक्षित मार्ग बतलाता जाता है और अन्धा उस निरापद मार्ग पर चलता जाता है और इस प्रकार दोनों नगरको पहुंच जाते हैं और दोनों बच जाते हैं।

इस प्रकार परस्परमें समन्वय करनेसे जैसे अंध और पंगुकी जीवन-रक्षा हुई उसी प्रकार भ० महावीरके इस समन्वयवादने सर्व दिशाओंमें फैल कर उलझी हुई असख्य समस्याओंको सुलझाने और परस्परमें सौहार्दभाव बढ़ानेमें लोकोत्तर कार्य किया।

इस प्रकार भ० महावीरने परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंका समन्वय किया। उनके इस सर्वधर्म समभावी समन्वयके जनक अनेकान्तवादसे प्रभावित होकर एक महान आचार्य-

---

१२ पाहुडदोहा ७७।
१३ समयसार गा० २३१ १४ सन्मतितर्क

१५ तत्त्वार्थवार्तिक पृ० १० । १६ [illegible]

06 05 2005 12 36

ने कहा है —

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवाद्स्स१७ ॥

जिसके बिना लोकका दुनियादारी व्यवहार भी अच्छी तरह नहीं चल सकता, उस लोकके अद्वितीय गुरु अनेकान्त-वादको नमस्कार है ।

भ० महावीरने धर्मके व्यवहारिक रूप अहिंसावादका उपदेश देते हुए कहा—

सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया
दुक्खपडिकूला अप्पिय-वहा ।
पियजीविणो जीविउकामा
णातिवाएज्ज किंचण१८ ॥

सर्व प्राणियोंको अपना जीवन प्यारा है, सबही सुखकी इच्छा करते हैं, और कोई दुःख नहीं चाहता । मरना सबको अप्रिय है और सब जीनेकी कामना करते हैं । अतएव किसी भी प्राणीको जरा भी दुःख न दो और उन्हें न सताओ ।

लोगोंके दिन पर दिन बढ़ती हुई हिंसाकी प्रवृत्तिको देखकर भ० महावीर ने कहा—

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं ण मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं णिग्गंथा वज्जयंति णं१९ ॥

सभी जीव जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता । इसलिये किसी भी प्राणी का बध करना घोर पाप है । मनुष्यको इससे बचना चाहिए । जो धर्मके आराधक हैं, वे कभी किसी जीवका घात नहीं करते ।

[illegible]नी वकी प्रचलित मान्यताके विरुद्ध भ० महावीरने कहा—

जन्म[illegible]त्तेण उच्चो वा णीचो वा ण वि को हवे ।
सुहा[illegible]कम्मकारो जो उच्चो णाचो य सो हवे २० ॥

ऊँची जाति या उच्च कुलमें जन्म लेने मात्रसे कोई उच्च [illegible] हो जाता और न नीचे कुलमें जन्म लेनेसे कोई नीच [illegible] जाता है । जो अच्छे कार्य करता है, वह उच्च है और [illegible] बुरे कार्य करता है, वह नीच है ।

इसी प्रक र वर्णवादका विरोध करते हुए भी उन्होंने कहा किसी वर्ण-विशेषमें जन्म लेने मात्रसे मनुष्य उस वर्णका नहीं माना जा सकता । किन्तु—

कम्मणा बंभणो होइ, कम्मणा होइ खत्तियो ।
कम्मणा वइसो होइ सुद्दो हवइ कम्मणा २१ ॥

मनुष्य कर्मसे ही ब्राह्मण होता है, कर्मसे ही क्षत्रिय होता है, कर्मसे ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किये कर्मसे होता है ।

भ० महावीरने केवल जाति या वर्णका भेद करने वालोंको ही नहीं, किन्तु साधु संस्थाके सदस्यों तकको फटकारा —

ण वि मुंडएण समणो ण ओंकारेण बंभणो ।
ण मुणी रण्णवासेण ण कुसचीरेण तापसो २२॥

सिर मुंडा लेने मात्रसे कोई श्रमण या साधु नहीं कहला सकता, ओंकारके उच्चारण करनेसे कोई ब्राह्मण नहीं माना जा सकता, निर्जन वनमें रहने मात्रसे कोई मुनि नहीं बन जाता, और न कुशा (डाभ) से बने वस्त्र पहिननेसे कोई तपस्वी कहला सकता है । किन्तु—

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
णाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तापसो २३ ॥

जो प्राणि मात्र पर साम्य भाव रखता है वह श्रमण या साधु कहलाता है, जो ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह ब्राह्मण कहलाता है । जो ज्ञानवान है, वह मुनि है और जो इन्द्रिय-दमन एवं कषाय-निग्रह करता है वह तपस्वी है ।

इस प्रकार जाति, कुल या वर्णके मदसे उन्मत्त हुए पुरुषोंको भ० महावीरने नाना प्रकारसे सम्बोधन कर कहा—

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२४॥

जो जाति या कुलादिके मदसे गर्वित होकर दूसरे धर्मात्माओंको केवल नीच जाति या कुलमें जन्म लेने मात्रसे अपमानित एवं तिरस्कृत करता है वह स्वयं अपने ही धर्मका अपमान करता है । क्योंकि धर्म धर्मात्माके बिना निराधार नहीं ठहर सकता ।

अन्तमें भ० महावीरने जाति-कुल मदान्ध लोगोंसे कहा—

कासु समाहि करहु को अंचउ,
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउ ।

१७ अनेकान्त जयपताका । १८ अज्ञात नाम
१९ दशवैकालिक, गा० ११
२० अज्ञात नाम

२१ उत्तराध्ययन । २२ उत्तराध्ययन, अ० २५, गा० ३३
२३ उत्तराध्ययन, अ० २५, गा० ३४
२४ रत्नकरण्डक, श्लोक २६

06.05.2005 12:36

हल सहि कलह केण सम्माणउ,
जहिं जहि जोवहु तहिं अप्पाणउ ॥२५॥

संसारके जाति कुल-मदान्ध हे भोले प्राणियो, तुम किसे छूत या बड़ा मान कर पूजते हो और किसे अछूत मान कर अपमानित करते हो? किसे मित्र मान कर सम्मानित करते हो और शत्रु मानकर किसके साथ कलह करते हो? हे देवानां प्रिय मेरे भव्यो, जहाँ जहाँ भी मैं देखता हूँ, वहाँ वहां सब मुझे आत्मत्व ही—अपनापन ही दिखाई देता है।

भ० महावीरके समयमें एक ओर लोग धन-वैभवका संग्रह कर अपनेको बड़ा मानने लगे थे और अहर्निश उसके उपार्जनमें लग रहे थे। दूसरी ओर गरीब लोग आजीविकाके लिए मारे-मारे फिर रहे थे। गरीबोंकी सन्तानें गाय-भैंसोंके समान बाजारोंमें बेची जाने लगीं थीं और धनिक लोग उन्हें खरीद कर और अपना दासी-दास बना कर उन पर मनमाना जुल्म और अत्याचार करते थे। भ० महावीरने लोगोंकी इस प्रकार दिन पर दिन बढ़ती हुई भोगलालसा और धन-तृष्णाकी मनोवृत्तिको देख कर कहा—

जह इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदी-सहस्सेहिं।
तह जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि २६॥

जिस प्रकार अग्नि इन्धनसे तृप्त नहीं होती है, और जिस प्रकार समुद्र हजारों नदियोंको पाकर भी नहीं अघाता है, उसी प्रकार तीन लोककी सम्पदाके मिल जाने भी जीवकी इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो सकती हैं।

इसलिए हे संसारी प्राणियो, यदि तुम आत्माके वास्तविक सुखको प्राप्त करना चाहते हो, तो समस्त परिग्रहका परित्याग करो। क्योंकि—

सव्वग्गंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥२७॥

सर्व प्रकारके परिग्रहसे विमुक्त होने पर शान्त एवं प्रसन्नचित्त साधु जो निराकुलता-जनित अनुपम आनन्द प्राप्त करता है, वह सुख अतुल वैभवका धारक चक्रवर्तीको नहीं मिल सकता है।

यदि तुम सर्व परिग्रह छोड़नेमें अपनेको असमर्थ पाते हो, तो कमसे कम जितनेमें तुम्हारा जीवन-निर्वाह चल सकता है, उतनेको रख कर शेषके संग्रहकी तृष्णाका तो परित्याग करो। इस प्रकार भ० महावीरने संसारमें विषमताको दूर करने और समताको प्रसार करनेके लिए अपरिग्रहवादका उपदेश दिया।

इस प्रकार भ० महावीरने लगातार ३० वर्षों तक अपने दिव्य उपदेशोंके द्वारा उस समय फैले हुए अज्ञान और अधर्मको दूर कर सज्ज्ञान और सद्धर्मका प्रसार किया। अन्तमें आजसे २४८३ वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रातःकालीन पुण्यवेलामें उन्होंने पावासे निर्वाण प्राप्त किया।

भ० महावीरके अमृतमय उपदेशोंका ही यह प्रभाव था कि आज भारतवर्षसे याज्ञिकी हिंसा सदाके लिए बन्द हो गई, लोगोंसे छुआछूतका भूत भगा और समन्वयकारक अनेकान्त-रूप सूर्यका उदय हुआ।